कहानी के यथार्थ का बदलता परिदृश्य

डॉक्टर पविता यादव

सहायक प्रवक्ता हिंदी विभाग

राजकीय महाविद्यालय

सतनाली, महेंद्रगढ़।

प्रत्येक कलाकार की अपने युग को अभिव्यक्ति देने की एक निजी और विशिष्ट दृष्टि होती है। उसकी यही निजी दृष्टि रचना को एक वैशिष्ट्य प्रदान करती है। यथार्थ को प्रस्थान-बिंदु मानकर भी आधुनिक युग के प्रत्येक कलाकार ने इसको अभिव्यक्त करने का अपना निजी ढंग और दृष्टि अपनायी। आधुनिक हिन्दी कहानी की विकास-यात्रा भी यथार्थ को भिन्न-भिन्न रूपों में स्वीकार करने की कहानी है। हिन्दी कहानी में जो विभिन्न आंदोलन और नारे उठे, उनमें यथार्थ को भिन्न रूप में प्रस्तुत करने का दृष्टिकोण और आग्रह ही प्रमुखतः रहा है। यह दूसरी बात है कि आंदोलन के झंडे उठाने में स्वयं को प्रस्थापित करने का भी न्यस्त स्वार्थ रहा है। इस प्रकार आधुनिक हिन्दी कहानी की विकास यात्रा को यथार्थ की विविधमुखी यात्रा कहना ज्यादा सही होगा।

आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी के 'द्विवेदी युग' की नैतिकतावादी दृष्टि और मान्यताएँ समस्त साहित्य के समान कहानी पर हावी थीं। बीसवीं शती के प्रारंभिक वर्षों से ही 'सरस्वती' के माध्यम से आचार्य द्विवेदी का वर्चस्व और नैतिक अंकुश स्थापित हो गया था। यही वह समय था जब आधुनिक हिन्दी कहानी जन्म ग्रहण कर रही थी, अपने प्रारम्भिक वर्षों में पग धर रही थी। हिन्दी की प्रथम मौलिक कहानी चाहे माधवराव सप्रे की एक टोकरी भर मिट्टी' हो अथवा किशोरीलाल गोस्वामी की 'प्रणयिनी परिणय', यह सुनिश्चित रूप से कहा जा सकता है कि हिन्दी कहानी ने बीसवीं शती के प्रारंभिक वर्षों में ही स्वरूप ग्रहण किया था। निश्चित सिद्धांतों और आदर्शों की पूर्ति के निमित्त कहानी गढ़ने के कारण यहाँ कल्पना का प्राधान्य होता था। 'कल्पना' के प्राधान्य से कहानी में विश्वसनीयता नहीं थी, अपितु 'झूठ' की हद तक 'कल्पना' का प्रयोग होता था। इसलिए कहानी की दुनिया सच्ची न होकर, यथार्थ न होकर, काल्पनिक ही होती थी। आख्यान तत्व की समाहिति से लेखक कहानी को अतीत की ओर मोड़ देता था वह बीते हुए युग की बात कहना ही अपना कर्त्तव्य समझता था।

हिन्दी कहानी को प्रेमचन्द के दाय का मूल्यांकन यहाँ हमारा अभीष्ट नहीं है, प्रस्तुत संदर्भ में यह ध्यान रखना ही अलम् है कि प्रेमचन्द ने कहानी को काल्पनिकता से मुक्त कर 'समाजिकता' से सम्बद्ध किया। अब उसके केन्द्र में व्यक्ति और उसका जीवन परिवेश आ गया। इस प्रकार उन्होंने हिन्दी कहानी को एक प्रकार से छायावादी रोमान' की प्रवृत्ति से मुक्त किया। हिन्दी कविता में जब छायावाद अपने पूर्ण वैभव पर था, ऐसे समय में प्रेमचन्द का यह कार्य अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। उन्होंने हिन्दी कहानी की धारा को कविता के पीछे नहीं चलाया। हिन्दी कथा में सामान्य मानव या कहें 'लघु मानव' की प्रतिष्ठा कर प्रेमचन्द ने नायकत्व की भारतीय अवधारणा को एक नूतन संस्कार दिया। इससे स्वतः ही हिन्दी कहानी का रुख अपने परिवेश की ओर मुड़ गया। अब कहानी में कल्पना या स्वर्णिम अतीत के इतिहास का लोक नहीं, अपितु कहानीकार के चारों ओर फैला लोक, समाज और परिवेश प्रमुख रूप से चित्रित होने लगे। जब कहानीकार का ध्यान अपने समाज की बहुविध समस्याओं की ओर गया तो कहानी स्वतः ही अपनी दृष्टि में पूर्णतः बौद्धिक हो गयी। बौद्धिकता के परिणामस्वरूप कहानी पूर्णतः काल्पनिक पात्रों एव चरित्रों को अस्वीकृत करने लगी। उसमें मनोवैज्ञानिक विश्लेषण, अनुभूति प्रवणता और यथार्थ के अन्य तत्त्वों का समाहार होने लगा। प्रेमचन्द यथार्थ को कहानी में यथावत उतार देने के पक्ष में नहीं थे, वे यथार्थ को 'निजत्व की परिधि में लाकर पुनर्सजित करने की बात प्रकारांतर से कहते हैं। उन्होंने कहा, "कला केवल पदार्थ की नकल का नाम नहीं है। कला दिखती तो यथार्थ है, पर यथार्थ होती नहीं। उसकी खूबी यही है कि यह यथार्थ न होते हुए भी यथार्थ मालूम हो।" प्रेमचन्द कहानी में मूल्यों और आदर्शों की नियोजना आवश्यक मानते हैं। प्रेमचन्द के कहानी-बोध से जुड़ी, जिसके फलस्वरूप वह अपने परिवेश तथा समय के ज्वलंत प्रश्नों से साक्षात्कार करती है। परिवेश से यह पहचान कहानी को जिन्दगी की साँसों से, सच्चाई से जोड़ती है।

प्रेमचन्दोत्तर काल से 'नयी कहानी' तक के समय के लिए प्रायः यह कहा जाता है कि हिन्दी कहानी ने कोई खास प्रगति नहीं की है, किंतु इस समय में भी कहानी की विशिष्ट प्रतिभाओं ने कथ्य और शिल्प के अनेक प्रयोग किये। जैनेन्द्र, यशपाल, इलाचन्द्र जोशी, 'अज्ञेय', उपेन्द्रनाथ अश्क, आदि ने अपने-अपने ढंग से कहानी को यथार्थ के मार्ग पर अग्रसर किया। जेनेन्द्र ने प्रेमचन्द की कहानी-परंपरा को आगे तो बढ़ाया, किंतु बाद में चलकर उनकी कहानियों में कथ्य से अधिक विचार लद गये, फलतः वहाँ यथार्थ की स्थितियां आरोपित अधिक जान पड़ती है। कुछ कहानियों में मानव-मन, विशेषतः नारी-मन, का सूक्ष्म अंतर्द्वन्द्व चित्रित करने के पश्चात जनेन्द्र पात्रों के माध्यम से मनो- विज्ञान और दर्शन की गुत्थी सुलझाने के पचड़े में पड़ने लगे, किंतु हिन्दी कहानी को यह उनका निश्चित योगदान है कि उन्होंने यथार्थ को समाज के आभ्यंतर को ही चित्रित करने वाला नहीं रहने दिया अपितु मानव-मन की अतल गहराइयों में उतारा। इसी परम्परा का सूत्र पकड़कर 'अज्ञेय' 'रोज'

जैसी प्रसिद्ध कहानी दे सके, जिसमें मालती के माध्यम से व्यक्ति मन की ऊब, एकरसता, उदासी, आदि का प्रामाणिक अंकन हुआ। 'रोज' कहानी का यथार्थ हिन्दी कहानी में कथ्य का एक नवीन आयाम उद्घाटित करता है। प्रेमचंद की सामाजिक समस्याओं को चित्रित करने वाली कहानियों की परम्परा में यशपाल ने समाज को विविध समस्याओं का चित्रण किया, किंतु इन कहानियों के यथार्थ पर कहीं प्रच्छन्न तो कहीं स्पष्ट रूप से राजनीतिक मतवाद का आग्रह छाया रहता है। उसकी कुछ कहानियां फ्रायडीय विचार-दर्शन और मनोविश्लेषण से भी प्रेरित है। इलाचंद्रजोशी भी इसी प्रकार अपनी कहानियों में मनोविज्ञान का अत्यधिक आग्रह लेकर आये है और कहीं कहीं तो ऐसा लगने लगता है कि वे अपने पात्र का चरित्रांकन नहीं अपितु उसकी 'केस स्टडी' प्रस्तुत कर रहे हैं। उपेन्द्रनाथ 'अश्क' की कुछ कहानियों में यथार्थ बहुत सशक्त रूप में सामाजिक सरोकारों से जुड़ जाता है। प्रेमचन्दोत्तर कहानी के इन समस्त कलाकारों की कमजोरी यह रही कि उनकी अपनी मान्यताएँ, विचार-दर्शन और मनोवैज्ञानिक विश्लेषण कहानी के यथार्थ को आक्रांत किये रहते है, जिसका परिणाम यह हुआ कि कहानी प्रेमचन्द की परवर्ती कहानियों के यथार्थ चित्रण के मुहावरे से न जुड़ सकी।

यथार्थ के प्रति नयी दृष्टि अपना लेने से समकालीन कथाकार की रचना- प्रक्रिया में एक मौलिक अंतर उपस्थित हो गया। पहले कहानीकार अपने को जीवन- स्थितियों से अलग रखकर उन्हें देखता था या उनमें प्रविष्ट होता था, आज वह जीवन की इन स्थितियों का सहभोक्ता है। रवीन्द्र कालिया इस स्थिति को इस प्रकार शब्द देते हैं-"पहले के लेखक की एक अतिरिक्त सत्ता थी, इसीलिए वह 'रचना करता' था आज का लेखक रचना को झेलता है, क्योंकि हर जगह भागीदार की हैसियत से वह विद्यमान रहता है।"" वस्तुतः आज कहानीकार कहानी को जीता है। अपने जिये हुए जीवन को कहानी में लाकर वह उन्हें काल और परिवेश के वृहत्तर प्रश्नों से जोड़ता है । यथार्थ की स्थितियाँ यहाँ लेखक की सोच पर दस्तक देती हैं। सोच की इस प्रक्रिया ने व्यक्ति और समाज की सत्ता को अलग-अलग रखकर नहीं देखा है। यथार्थ के अनुभवों के माध्यम से साहित्यकार अपने को समाज से जोड़ता है। इस रूप में यहाँ व्यक्ति और समाज की गहरी संपृक्ति है। रचनाकार के परिवेश की यह अनिवार्यता है कि वह यथार्थ की घटनाओं, स्थितियों के माध्यम से मानवीय अस्तित्व से सम्बन्धित प्रश्नों पर दृष्टिपात करे। "उस परिवेश के बोध की, उन घटनाओं के भीतर फैलने वाली अन्तर्दृष्टि की, समग्र परिप्रेक्ष्य अपनी सर्व प्रेत- छायाओं के साथ जिससे यकायक दिप उठे उस प्रातिभ कल्पना की अपेक्षा कथा- कार से न हो तो फिर किससे हो ! "3 इस प्रकार आज यथार्थ चित्रण में लेखकीय अन्तदृष्टि एक आवश्यक शर्त है।

अन्तदृष्टि से शून्य जो लेखन 'कहानी' के नाम पर आज मात्र व्यावसायिक दृष्टि से हो रहा है, वह तो शीघ्र ही काल के गाल में बिला जायेगा। पुराने दौर के, नयी कहानी के समय के, कथाकारों ने भी समकालीन कहानी में यथार्थ के इस बदलाव को विभिन्न रूपों में अपने कथा-संग्रहों की भूमिका आदि में स्पष्ट किया। शिव प्रसाद सिंह अपने 'मेड़िए' (1977 ई०) संग्रह की भूमिका में कहते हैं, "इस संकलन में रेशमी ताने-बाने को झटके के साथ तोड़ दिया गया है और एक खुरदरे, पर जीवंत यथार्थ के आमने-सामने पाठकों को खड़ा करने की लेखकीय कोशिश रही है। "4 आज लेखक का प्रयत्न यह रहता है कि यथार्थ के प्रति जितनी तीव्र प्रतिक्रिया वह अपनी सोच द्वारा प्रकट करता है, उतनी ही तीव्र प्रतिक्रिया उसके पाठक में भी जग सके।

संदर्भ ग्रंथ सूची -

1. प्रेमचन्द, मानसरोवर', भाग-1, भूमिका।

2. भागीदारी और अभागापन' 'समकालीन कहानी दिशा और दृष्टि'

संपा० डॉ० धनंजय, पृ० 171 3. अमृतराय, 'आधुनिक भावबोध की संज्ञा', पृ० 45

4. भूमिका ।

5. कुँवर नारायण, 'आकारों के आस-पास', भूमिका ।